

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । भक्ति अध्योक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वैधनकर ॥

वर्ष १८ }

गौराब्द ४८७, मास-मध्यसूइन २७, वार-संकरण
लोमबार, ३१ बैशाख, सम्वत् २०३०, १४ मई, १९७३

{ संख्या १२

मई १९७३

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीशुकदेव गोस्वामीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।६।०।४७-५०)

तीर्थं चक्रे नूपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित् पादशौचं
विद्विट्स्तिर्ग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्थदर्थेऽन्ययत्तः ।

यन्नामामंगलधनं श्रुतमय गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः
कृष्णस्यैतत्र चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥४७॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! इस समय यदुकुलमें श्रीकृष्ण-कीर्ति रूप जिस तीर्थकी उत्पत्ति हुई है, वे तीर्थं गङ्गारूपी अपने पाद-शौचजात प्राचीन तीर्थको भी लघु बनाकर सब तीर्थोंके

ऊपर विराजमान हुए हैं। शत्रु-मित्र गमी हो उस स्वरूप तक पहुँचनेमें समर्थ हुए हैं। जिनकी कृपा प्राप्त करनेके लिए ब्रह्मादि देवता लोग भी प्रयास कर रहे थे, वे ही श्रीलक्ष्मीजी दूसरोंके द्वारा अप्राप्ता होकर एकमात्र कृष्ण-सेवामें ही लगी हुई थी। जिनका नाम श्वरण या कीर्तन करने पर सभी प्रकारके अमर्गत नष्ट हो जाते हैं एवं जिनके द्वारा ऋषि वंशोंमें धर्मका प्रवर्तन हुआ है, वे ही सर्वसंहारक कालमूर्ति एवं अनन्त तथा दुरन्तिकन प्रभाववाले चक्रधारी श्रीकृष्णके लिए यह भूभारहरण कार्य आश्चर्य नहीं है ॥ ४७ ॥

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वर्दोर्भिरस्यश्वधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्द्धयन् कामदेवम् ॥४८॥

जनगण या प्राणियोंके अन्तर्यामी रूपसे जिनका निवास है या गोप-यादवों आदियों में जिनका निवास है अथवा जनगणों (जीवों) के निवास अर्थात् आश्रय हैं, देवकीके उदरमें जन्म जिनके लिए वादमात्र है, वस्तुतः जो अजन्मा या जन्मरहित हैं, यदुश्रेष्ठ लोग जिनके सेवक हैं या जो यदुओंके सम्भाप्ति हैं, इच्छामात्रसे ही निरसन-समर्थ होकर भी जो अपने बाहुबलसे या अपने तुल्य अर्जुनादि भक्तों द्वारा धर्म-विरोधी असुर-समुद्रोंके नाश करनेवाले हैं, जो स्थावर-ज्ञान प्राणियोंके संसार दुखहारी हैं अथवा व्रजपुर के अपने सेवकोंके तदीय (उनके) विरह द्वारा उत्पन्न दुःखके नाशकारी हैं एवं सुस्मित श्रीमुखके द्वारा वज्रांग वनिताओं (या मथुरा, द्वारका, वज्रांगवासिनी वनिताओं) के काम (विगुद्ध प्रेम) के वर्द्धनकारी हैं, ऐसे श्रीकृष्णकी जय हो ॥४८॥

इत्थं परस्य निजवत्मरिरक्षयात् लीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि ।
कर्मणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुदृत्तमित्तन् ॥४९॥

जो व्यक्ति इन श्रीकृष्णके पादपद्म-युगलमें भक्तिकी कामना रखते हैं, वे पहले कहे गये प्रकारसे स्वप्रवक्तित धर्मपथके रक्षाकारी, मत्स्य-कूर्म-वराहादि मूर्तिधारी यदुप्रवर उन परमपुरुषके ललत-रूपानुयायी जीवके कर्मवन्धन-नाशक चरित्रोंका श्वरण करेंगे ॥४९॥

मत्त्वस्तयानुसमेधितया मुकुन्द श्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयति ।

तद्वाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिमुजोऽपि यथुर्यदर्थः ॥५०॥

जिन्हें प्राप्त करनेके लिए राजा लोग भी पूर्वकालमें अपने राज्यका परित्याग कर वनगमन किये थे, मनुष्य लोग सुरम्य कृष्णकथाके श्वरण-कीर्तनयुक्त चिन्ता द्वारा क्रमशः वृद्धिप्राप्त भक्तिबलसे दुर्लभ्य कालप्रभावका अतिक्रमण कर उन भगवानके नित्य लोकको प्राप्त किया करते हैं ॥५०॥

॥ इति श्रीशुकदेव गोस्वामीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीशुकदेव गोस्वामीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्त ॥

हरिनाममें कैसे रुचि हो ?

सबसे पहले नाम क्या वस्तु हैं, यह जानना आवश्यक है। श्रील रूप गोस्वामी प्रभुने कहा है—

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला
द्युतिनीराजितपादपञ्चजान्त ।

अथ मुक्तकुलैरूपस्यमानं
परितस्त्वां हरिनाम संथयामि ॥

नाम एक अचेतन पदार्थ नहीं है। जहाँ नाम अचेतन पदार्थ वाचक हो, नाम-नामी भेद हो, वहाँ 'हरिनाम' सम्बन्धमें नहीं कहा गया है। हरिनाम आभिधानिक शब्द या प्राकृत व्याकरण-निष्पत्र शब्द नहीं हैं। दूसरे सभी शब्दोंके उद्दिष्ट वस्तु स्वतन्त्र हैं, शब्द स्वतन्त्र है। 'हरिनाम' बात कर सकते हैं। जो हरिनाम ग्रहणकारी हैं, वे चेतनमय वस्तु हैं। वे कह रहे हैं—'हे हरिनाम ! मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारा आनुगत्य मैंने स्वीकार किया जो हरिनाम करनेमें प्रवृत्त होते हैं, वे हरिनाम प्रभुके भूत्य हैं। जगत्‌के शब्द मात्र ही हरि को छोड़कर दूसरी वस्तुओंका निर्देश करते हैं। जो सभी वस्तुएं जागतिक शब्दों द्वारा उद्दिष्ट हुए हैं, वे अन्यान्य इन्द्रियों द्वारा आलोचित होकर उनके सम्बन्धमें सभी इन्द्रियोंकी अभिज्ञताका कुल तात्पर्य मन द्वारा ग्रहण किया जा रहा है। प्रत्येक इन्द्रियोंकी वृत्ति भी स्वतन्त्र है। शब्द जिह्वा द्वारा

उच्चारित होता है। किन्तु जिह्वा द्वारा वह आस्वादन करने योग्य नहीं है, त्वचा द्वारा उमे स्पर्श नहीं किया जा सकता। शब्द केवल कर्णोद्धियद्वारा ग्रहण करने योग्य है। हरिनाम ऐसे शब्दके साथ समान श्रेणीमुक्त नहीं हैं। दूसरे शब्द कानोंमें प्रवेश होनेके साथ-साथ चार इन्द्रियाँ उनके सम्बन्धमें जिज्ञासु होती हैं। शब्द शब्दीको लक्ष्य करता है। जागतिक शब्दका शब्दी बाहरी जगतकी कोई वस्तु है, जो इन्द्रिय-ग्राह्य है। शब्द कानोंमें जाकर दूसरी इन्द्रियों से कहता है कि तुम लोगु समझ सो कि वस्तु क्या है ?

ससीम वस्तुकी जिस प्रकार एक परिभाषा है, उसी प्रकार हम व्यतिरेक रूप से असीम वस्तुका नाम या परिभाषा कर सकते हैं। सीमाविशिष्ट वस्तुके सम्बन्धमें इन्द्रियोंके द्वारा माप लेनेका एक कार्य उपस्थित होता है। जिसकी सीमा नहीं है, चेष्टा करके भी हम उसका कोई पार नहीं पाते। इस प्रकारके कार्यको असीम (infinity) नामक एक शब्द द्वारा लक्ष्य किया जाता है।

यदि शब्द द्वारा जानने योग्य वस्तु सीमाविशिष्ट हो, तो उस वस्तुको जाननेके लिए विभिन्न इन्द्रियोंको नियुक्त करते हैं। हरिवस्तु सीमाविशिष्ट नहीं है। वे सीमाविशिष्ट

वस्तुकी सीमा हरण करते हैं। असीमका जब वे हरण करते हैं, तब वे सीमाविशिष्ट हैं। ससीम वस्तु कदापि असीम नहीं है। देश सम्बन्धमें आलोचना हा, तो सीमाविशिष्ट वस्तुमें जो हेतु या तुच्छता है, हरिमें उसका आरोप नहीं किया जा सकता। असीम वस्तुके अभ्यन्तरमें 'सीमा' नामक एक कार्य है। किन्तु ससीम एवं असीम शब्द हरिमें युगपत् या एक ही साथ प्रयुक्त हो सकते हैं। समस्त वस्तुओंको जो ले लेते हैं, वे ही वह हरि हैं।

मुर्यंको 'कपि:' (कं जलं पिवति इति कपि:) कहा जाता है, क्योंकि वे जल को खींच लेते हैं। हरि केवल जलको नहीं खींचते। जड़जगतकी जिन्हीं वस्तुएँ—त्रिति, अप् (जल), तेजः (शमि), मरुत् (हवा), व्योम (आकाश)—सभीका वे हरण (आकर्षण) कर सकते हैं। 'अभाव' एवं 'भाव' दोनों प्रकारकी वस्तुओंका वे हरण, आकर्षण कर सकते हैं।

हरण कायंका निविशेष-विचार नहीं प्रहरण करना होगा। सविशेष आकर्षण-विचारसे हरिको 'विष्णु' कहा जाता है। वत्तमानता एवं अवत्तमानता दोनोंको ही हरण करनेका सामर्थ्य उनमें है। 'विष्णु' व्यापक अर्थमें व्यवहार किये जाते हैं। हम इस हरिको समझन पाकर दूसरे प्रकारसे बहुत-सी बातें कहते हैं—हरिको निविकार निराकार कहते हैं। आँखें असीम वस्तुको ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं हैं। आँखों द्वारा जो अग्राह्य है, ऐसे असीम आकार विशिष्ट वस्तुको निराकार कहते हैं। किन्तु आकाश की असीम कहनेसे असीम इन्द्रियग्राह्य हो

जाता है, ससीमके अन्तर्गत दो जाता है। ससीमका गुणाफल (multiple of something indefinite) विचार हो जाता है, आँखोंकी दृष्टिशक्तिकी सीमा तब परिमापक हो जाती है। विकारशील जगतमें हम निविकार वस्तु नहीं देखते। 'नेति, नेति' कर हम सोचते हैं कि यह निविकार है। अपनी धारणाको बाहर की वस्तु निर्देश करने जाकर धारणाके बीच वत्तमान वस्तुका हम लोप करते हैं। दृश्य (Phenomena) को इस प्रकार विदा करनेसे दृश्य विषयकी दूसरी दिशा या तरफ ही हमारा उद्दिष्ट वस्तु होता है।

जड़ वैज्ञानिक लोग विचार कर सकते हैं कि वे सब कुछ समझ चुके हैं। वे जो समझ पाये हैं, वह 'ईश्वर' शब्द वाच्य नहीं हो सकता—वह सब 'बान्दा' या भूत्य हो जाता है। ऐसा सोचना भी नहीं रहता। ये सभी शब्द अर्थात् निराकार, निविकार, व्यक्तित्व हीन आदि शब्दोंके व्यवहार द्वारा भगवानके व्यक्तित्वका अपलाप या अस्वीकार करना हुआ जो मेरे वशीभूत नहीं है, उसे उद्देश्य कर एक शब्दमात्र प्रयोग किया जाता है, वह शब्द वस्तुमें नहीं आता। इस जगतकी वस्तुको छोड़कर उसके अभाव बोधक दूसरी वस्तुओं को जिस शब्द द्वारा लक्ष्य करते हैं, हम उस शब्दको 'बड़ा' समझते हैं। किन्तु वह शब्द पूर्ण अद्वय वस्तुकी एक आंशिक प्रतीति मात्र है। आधी वालोंको लेकर हमारी अभिज्ञता है। दूसरी आधी वातको हम नहीं जानते। हम देखते हैं—इन्द्रियाँ देखती हैं वृत्ताद्धं (hemisphere)। वृत्तका दूसरा आधा (other

moiety) सर्वंदा अस्त्रीकार होता है। देशके सम्बन्धमें ये सभी बातें कही जा रही हैं।

फिर कालके सम्बन्धमें इतिहासमें बहुतसी बातें लिखी गई हैं। सूर्यका भ्रमण ग्रह-नक्षत्रादिका भ्रमण, जागतिक सभी कार्यों के घटनाकाल आदि कालविचारके अन्तर्गत हैं। इस कालके राज्यके विचारको छोड़कर कानातीत राज्यके विषयको 'महाकाल' आदि शब्दों द्वारा व्यक्त करते हैं। 'महाकाल' काल का अव्यवहित (असीम या बाधारहित) अभियान या अनुभूति (uninterrupted Cognisance of time) है। तीन वर्ष, साडे तीन वर्ष आदि खण्डकालको लक्ष्य करते हैं। दूसरे अंशको छोड़कर एक अंशको कहा जाता है। खण्डकालका हरण करनेके कारण भगवान्को महाकाल भी कहा जाता है। महाकाल हरण करनेके कारण उन्हें खण्डकाल भी कहते हैं। वे खण्डकालके भीतर उनके अन्तर्गत रूपमें आ नहीं सकते। वे काल, महाकाल दोनोंका हरण करते हैं।

पात्रके सम्बन्धमें विचार करने पर देखा जाता है कि पात्र द्वारा विशिष्ट वस्तुओं (individuallity) समझा जाता है; जो काल एवं देश सम्बन्धी कार्यको अन्तर्भुक्त करता है (incorporates the factors of time and space)।

खण्डित पात्र—जिस प्रकार कोई विशिष्ट व्यक्ति अर्थात् खण्डकाल एवं खण्ड-देश

अवकाशको आवृत रखते हुए जो मनुष्य हो, उसे व्यक्तिविशेष कहा जाता है। दूसरा मनुष्य—वत्तमान एवं भविष्यतके मनुष्यको अन्तर्भुक्त करे, उसे 'विराट' के रूपमें कल्पना की जाती है। 'एक' पात्र विभिन्न होकर बहुपात्र है। जिस प्रकार एक ग्लास पानीमें आलोक या प्रकाश प्रतिफलित हुआ है या एक हजार ग्लासोंमें प्रतिफलित हुआ है अथवा समानान्तर दर्पणमें (in parallel mirrors) प्रतिफलित हुआ है। एक वस्तु ही बहुत हुआ है। वस्तुका बहुत्व हुआ नहीं है—उसका सादृश्य बहुत हुआ है। उससे वस्तुका एकत्व नष्ट नहीं होता।

विशिष्ट अवकाशके (Particular span के) बीच विशुद्ध विश्रह (figure) का अधिष्ठान हो सकता है। बाहरी जगतकी दृश्य वस्तुके साथ भूलसे भी समान विचार न करना होगा। वे उसकी व्यपेक्षा अधिक शक्ति-विशिष्ट हैं। वे जगत्के समस्त व्यक्तियोंकी सभी युक्तियोंका खण्डन कर विराजमान हो सकते हैं। वे पात्रका हरण कर सकते हैं, नित्यकाल आत्मवत्तिमें रख ले सकते हैं। अल्पकाल स्थायी विमुख मानव-जीवनका हरण कर नित्य आत्म-जीवनमें प्रतिष्ठित कर सकते हैं। वे केवल सीम वस्तुका ही हरण कर सकते हैं, ऐसी बात नहीं हो सकती।

समस्त शब्द ही हरि हैं। हरिको छोड़कर दूसरा कोई शब्द नहीं है। 'हरि' शब्दमें हरण करनेका धर्म है। जिस हरि शब्दमें हरण धर्म नहीं है, वह हरि नहीं है।

जिस प्रकार आभिधानिक अर्थवाचक घोड़ा अदि शब्द। वहुतसे व्यक्ति रूपक, एतिहासिक आध्यात्मिक अर्थ सदमना चाहते हैं। 'हरि' में केवल उतने मात्रका ही प्राप्ति नहीं है। 'हरि' में एक ही कालमें एक ही साथ व्यक्तित्व एवं अव्यक्तित्वकी विशेषता है। तथाकथित युक्तिमार्गके विचारद्वारा नाना प्रकारके जो सभी शब्द उपस्थित हुए हैं, 'हरि' शब्दमें उन सभी शब्दोंकी अपेक्षा अत्यधिक विशेषता है।

वे 'हरि' शब्द जब कानोंमें प्रवेश करते हैं, तब उनमें इतनी शक्ति है कि वे उस समय दूपरे सभी प्रकारके अभिज्ञान या परिचयों को भूला देते हैं। शब्द जब पूर्णताको उद्देश्य करता है, तब शुद्धताको नहीं बतलाता, ऐसी बात नहीं है। 'ब्रह्म' शब्द शुद्धत्वकी संरक्षा नहीं करता। केवल अति वृहत्त्वका लक्ष्य करता है। जब केवल अति वृहत्त्वको लक्ष्य करे, तब मनुष्योंकी इन्द्रियाँ निषिक्य (benumbed) हो जाती हैं। यह शब्द इतनी अधिक शक्ति दिखलाता है कि मनुष्यकी सभी अभिज्ञताओंको निस्तब्ध कर देता है। यह शब्दके विद्वद्भिरिक्ति (मुख्यतम अर्थं व्यञ्जक वृत्ति) का पूर्ण परिचय नहीं है। आवृत-विशेष परिचय पूर्णताको लक्ष्य नहीं करता। दूसरी वस्तुओंसे पृथक् कर चार (४) कहा गया। १, २, ३ एवं ५, ६, ७ आदिको छोड़ दिया गया। शब्दकी स्थिति-स्थापकता मात्र देखी जा रही है, जहाँ-तहाँ 'चंकुण्ठ' शब्द नहीं हुआ, हरिज्ञापन नहीं हुआ। हम माप लेनेके धर्ममें पड़ गये।

'हरि' ही नाम है। कमंधारय समाप्त— "हरिश्चेति नाम चासी।" हे हरिनाम ! मैंने सम्पूर्णरूपसे तुम्हारा आश्रय ग्रहण किया— और सब कुछ छोड़ दिया। 'हरि' शब्दका मैंने आश्रय लिया। मुक्तकुल—जिन लोगोंने मुक्ति पायी है, वे लोग उपासना कर रहे हैं—इस जगतमें जिनके लिए और कोई कत्तव्य नहीं, वे लोग श्रीहरिनाम ग्रहण करते हैं। 'हरिनाम' अवेतन या कल्पित पदार्थ नहीं, दृश्यपदार्थविशेष नहीं है, दृश्य जगतकी कोई वस्तुविशेष नहीं है। हम हरिनाम को सम्पूर्ण रूपसे आश्रय ग्रहण करेंगे, और किसीके पास नहीं जायेंगे। चंकुण्ठ वस्तुको सम्पूर्ण प्रकारसे आश्रय करेंगे तुम्हें ही या हरि शब्दको ही आश्रय करेंगे। नाम एवं नामीमें प्रमेज नहीं है। नाम ही नामी है—उही वस्तु है। ऐसे तुम्हारा मैंने आश्रय लिया।

[प्रश्न—यदि ऐसी विवेचनामें भूल हो ?]

उत्तर—ऐसा नहीं हो सकता। जो सभी चंकुण्ठ शब्द मुख्यतम अर्थव्यञ्जक वृत्तिद्वारा प्रसाधित हुए हैं, हरिनामने उन सभी शास्त्रों (Scriptures) को अंगीभूत किया है। योद कोई ईसाई धर्मके व्यक्ति कहे कि उनके शास्त्र (Scriptures) अलग हैं, 'निखिल' शब्द द्वारा उसकी संभावनाका खण्डन किया गया है। जो सभी शास्त्र (Scriptures) इस जगतमें अवतरण किये हैं, जो नहीं आये हैं या जो लण्डकालमें अवतरण नहीं करेंगे, वे सभी शब्द शास्त्र हरिनामको उद्देश करते हैं। उनके शिरोभाग समूहकी रत्नमाला—'रत्न' जिससे आलोक उठ रहा है, हरिनामका नीराजन या

आरति कर रहा है श्रीविष्णुको श्रीतल जलमें
धो देना—स्नान करा देना हुआ—अचमनीय
देना हुआ। पाँव धो दिया गया। यह जो ठन्डा
जल लगा, उसमें समशीलोषण भाव लाने के
लिए थोड़ा गरम सेक देना हुआ। इसी का
नाम 'नीराजन' है। 'पाँव' हरिनामका पादपद्म
है। उनका अन्तप्रदेश या भीतरी प्रदेश
नीराजित हो रहा है। कोई कीवड़ आदि
मलिनता आकर कलंकित नहीं कर सकती।
इसी हरिनामका आश्रय यहण करना होगा,
वही आचार्योंका उपदेश है।

और जो हरिनाम अपनी कोई सुविधा
करा दे, वह हरिनाम बद्धजीवकी एक जागतिक
चेष्टा मात्र है। कोई कह सकते हैं—‘मैं बंगाली
हूँ, बंगालका व्यक्ति हूँ, मेरा हरिनाम है।’
पुनः और कोई कहते हैं—‘मैं दूसरा देशवासी
हूँ, मेरे लिए दूसरा शब्द है।’ ऐसा विचार
कर जातिगत, देशगत धर्म द्वारा भिन्नजाति
भिन्नदेशके धर्मसे रक्षा पानेकी चेष्टा हमारे
लिए आवश्यक विषय नहीं है। वैसे शब्द प्रेरणा
का अभाव उत्पन्न करते हैं। उस प्रकारसे
नामका भजन नहीं हो सकता। नाम-भजनको
थोड़ाकर दूसरा पथ नहीं हो सकता। ‘मुक्त
जीवके उपास्य’ अर्थमें बद्धजीवकी धारणा
सुविस्तार होकर वहाँ पहुँच, ऐसी बात कही
जा रही है। वैकुण्ठ नाममें रुचि होनेकी बात नहीं कही
जा रही है। जिस हरिनाम द्वारा महामारी
कलेरा (Cholera), दुमिक्ष आदि अच्छा हो,
वैसा हरिनाम नहीं करना होगा।

[प्रश्न— किन्तु हरिनाम करनेसे तो

महामारी आदि ठीक होते हैं]

उत्तर—ऐसा होने पर 'हरि' को नीकर
बनाना हुआ— वह बात वत्तमान है, भिन्न
भिन्न अपेक्षायुक्त अवस्थामें वत्तमान है, तो
रहे। उपसे भी ऊँची गा थेषु बात यूनी जाय।
सत्य कथा और किसीकी भी अपेक्षा नहीं
करती, जिसके सुनने पर लाख लाख व्यक्ति
अमनुष्ट एवं कोदित हो जायेगे।

वैकुण्ठमें एक पिह एक मनुष्यको खा लेने
पर मायिक जगतमें यह एक प्रबल दुर्भाग्य है।
किन्तु वैकुण्ठमें वैसी असूविधा नहीं होनी।
इस जगतमें कर्मफलमें एक व्यक्तिकी प्रार्थना
एक प्रकार है और दूसरे व्यक्तिकी प्रार्थना
दूसरे प्रकार हो पड़नी है। किन्तु नित्य जगत
में गोवा ही नित्य कर्म है। अल्प दिल्लिसे फल
माथ ही माथ मिलेगा। ऐसी इच्छा भोगपर
कर्मवादी की है। इसलिए 'वैकुण्ठ' शब्दकी सत्य
कथा उड़ा देंगा— ऐसा विचार संगत नहीं
है।

यह देह कब तक रहेगा? देह फल
पायेगा, ऐसा गोचा जा सकता है। किन्तु
वह अविवेचना है या सुगिक्षाका अभाव है,
गही जानना होगा। यदि इन सबको लेकर
रहें, तो जिनके ये सभी अभाव दूर हो जाये
हैं, उनकी बात सुननेमें नहीं आती। उनकी
ही बात सुननी होगी। अपनी सुविधा नामक
जो वस्तु है, वह इन बातोंमें नहीं है।

[प्रश्न— विचार-भाव क्यों आते हैं?]

उत्तर— हम अनर्थयुक्त हैं, इसी कारण

से । यह सब हरिनाम नहीं है, ये सभी अपने समय वितानेके लिए हैं । ऐसा समय न विताना ही अच्छा होगा ।

[प्रश्न— क्या यह सब कुछ छोड़ दिया जाय ?]

उत्तर— छोड़ देने की बात मैंने नहीं कही । जब स्वयं समझेंगे, तब जो उचित हो, सो करेंगे । श्रवण कर जब तक नित्य सत्यमें रुचि न हो, तब तक इन बैंकुएंड नाम का श्रवण करना होगा । आपने जो शिक्षा पायी, उससे आप जान नहीं सके । बद्धावस्था में तो नहीं समझेंगे । तब तक यही करते रहेंगे, जिससे बीमारी अच्छी नहीं होगी । ये सभी चिन्ताएँ थोड़ी देरके लिए स्तब्ध होने पर समझ सकेंगे । हरिनामके सम्बन्धमें साहित्य छपाया जा रहा है । प्रतिदिन नयी नयी बातें कही जा रही हैं, जिस प्रकार नये व्यक्तियोंके साथ मिलन हो रहा हो । आप नये के बशमें हों, तो रुचि नहीं होगी ।

[प्रश्न— विचार त्याग करना क्या उचित है ?]

उत्तर— कौन-सा विचार ? अनवर्युक्त अवस्थामें जो उन्मादका विचार है, वह क्या वांछनीय है ? वह विचार कब तक रहेगा, विचार करें । उसका स्वायित्व कितना है ? यह बात छोड़कर बाकी जो विचार कर रहे हैं, उसकी कब तक रक्षा कर सकेंगे ? कुछ देर परन्तु ही आप छोड़ देंगे । अपरिवर्त्तनशील कार्यके साथ परिवर्त्तनशील कार्यको एक नहीं

करना होगा । ऐसा करने पर यही समझना होगा कि चैतन्यचरितामृत को एक अक्षरमें भी प्रवेश नहीं हुआ । यह भाषा इस देशमें अब तक अ.यी नहीं है ।

(प्रश्न— समझ नहीं पा रहा हूँ, अतएव लाभ नहीं है ।)

उत्तर— किन्तु यह बात ही तो सत्य है । जब realise (अनुभव) कर सकेंगे, तब समझ पायेंगे, जन्म-जन्मान्तरमें समझ पायेंगे । भगवान् केवल आपको वंचित ही रखेंगे, ऐसी बात नहीं है । यह पेड़का फल नहीं है, जो अ.ये एवं तोड़कर ले गये । जन्म-जन्मान्तर के कितने संस्कार, कितनी बातें साथ लेकर आये हैं । वह सब नहीं दूर होने पर कैसे सुन सकेंगे ?

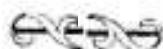
(प्रश्न— श्रीमन्महाप्रभुजीने जिसे-तिसे दान किया ?)

उत्तर— श्रीमन्महाप्रभुजी ने जिसे-तिसे दिया । किन्तु मेरा जैसा व्यक्ति उन्हें न दिला । ऐसा न होने पर मैं यहाँ आकर वयों रहता हूँ ? यदि सोचें कि जिसे-तिसे दे गये, मैं उससे थोड़ा अच्छा हूँ, तो प्राप्त नहीं करेंगे । श्रीमन्महाप्रभुजीने जिन्हें दिया, पहले उनमें उसे ग्रहण करनेके लिए शक्ति-संचार किया । आप यदि वह शक्ति प्राप्त करें, तो आपको भी मिल सकता है ।

श्रीमन्महाप्रभुजी जब जिस पर दया करते हैं, तब वह दया आ जानेपर सुविधा होती है । किन्तु मुझे दयाकी आवश्यकता नहीं

है, जब तक ऐसा मनमें रहे, तब तक दया पाठशालाके छात्रको समझाया नहीं जा आ जाने पर भी उसे ग्रहण नहीं किया जा सकता । बी० ए० क्लासका पाठ्य कदापि

—जगद्गुरु ३५ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर



कृष्णनामरसिक भक्तोंकी प्रार्थना

श्रीरामेति जनार्दनेति जगतां नाथेति नारायण-
-त्यानन्देति दयापरेति कमलाकान्तेति कृष्णेति च ।

श्रीभगवन्नाम-महामृताविद्यलहरोकल्लोलमग्नं मुहु-
-मुहूर्न्तं गलदश्चु-नेत्रमवशं मां नाथ ! नित्यं कुरु ॥

श्रीभगवन्नाम-कोमुदीके रचयिता श्रीलक्ष्मीधरजी प्रार्थना करते हैं— हे श्रीराम ! हे जनार्दन ! हे जगन्नाथ ! हे नारायण ! हे आनन्दमय ! हे दयापर ! हे कमलाकान्त ! हे कृष्ण ! हे नाथ ! इस प्रकारके आपके जो सम्बोधनमय नामरूप महान् अमृत समुद्र हैं, उनकी प्रेमरूपी तरंगोंमें मुझे निमग्न कर दीजिए। संसारी जनोंका पुत्र-पौत्रादिमें जैसा मोह होता है, ऐसा मोह आपके नाममें कर दीजिए। कीर्तन करते समय मेरे दोनों नेत्रोंसे अबस्थ अशुद्धारा बहा करे, एवं मैं स्त्री कीर्तनानन्दमें मग्न हो जाया करूँ । प्रभो ! आपकी कृपासे मेरी यह स्थिति नित्य ही बनी रहे ।

कृष्ण राम मुकुन्द वामन वासुदेव जगद्गुरो !
मत्स्य कच्छप नारदिमुनीन्द्र-वन्द्य ! दयानिधे !
देव-दानव-नारदादिमुनीन्द्र-वन्द्य ! दयानिधे !
देवकीसुत ! देहि मे तब पादभक्तिमचञ्चलाम् ॥

और कोई नामरसिक भक्त भी प्रार्थना करते हैं— हे कृष्ण ! हे राम ! हे मुकुन्द ! हे वामन ! हे वासुदेव ! हे जगद्गुरो ! हे मत्स्य ! हे कच्छप ! हे नरसिंह ! हे वराह ! हे राघव ! मेरी रक्षा कीजिए। हे देव-दानव-नारदादि मुनीन्द्रोंके वन्दनीय ! हे कृपासिन्धो ! हे देवकीनन्दन ! आप अपने चरणकमलोंमें मुझे निश्चला भक्ति प्रदान कीजिए ।

(पद्मावलीसे उद्धृत)

प्रश्नोत्तर

(भक्त्यानुकूल्य)

१-भजनके अनुकूल एवं प्रतिकूल आश्रम का विचार कैसे करें ?

“नामाधित भक्त गृहमें रहे या बनमें जाय; उसमें कोई विचार आवश्यक नहीं है। क्योंकि गृह नामानुशीलनका अनुकूल होने पर भिक्षाप्रसन्ने अच्छा होगा। पुनः नामानुशीलनके प्रतिकूल होने पर गृहत्याग करना ही वैष्णवोंका कर्तव्य है।”

—‘नामबल पर पापबुद्धि।’ ह० चि०

२-नाम-भजनकारी का आनुकूल्य एवं प्रतिकूल्य विचार कैसा है ?

“नाम-भजनकारी व्यक्तिके लिए जो नामके लिए अनुकूल है, उसे छोड़कर और कुछ भी कार्य नहीं करना चाहिए। नामापराध अर्थात् नामका जो प्रतिकूल है, उसे सब प्रकारसे परित्याग करना होगा। कृष्ण ही मेरे एकमात्र रक्खाकर्ता एवं प्रतिपालक हैं—ऐसे अनन्यभावका आश्रय प्रहण करेंगे।”

—‘कृष्णदास्य’ स० त० ११६

३-भगवानको निवेदन की हुई तुलसी-चन्दनादि वस्तुओंका धारण भक्तिका अनुकूल क्यों है ?

“तुलसी आदिके आधारके द्वारा

लाम्पट्ट्य-वृत्तिके उत्तेजकरूप दूसरे तीव्र गन्धादिका परित्याग हो जाता है। गंध-द्रव्यकी लम्पट्टासे जगतमें बहुतसी विपत्तियाँ होती हैं। कर्माधनरूप देहको गन्ध-द्रव्य द्वारा प्रलेपित करते हुए मूढ़ व्यक्ति स्त्री-लम्पट्टा, आलस्य आदि अनेक अनर्थों को स्थान देते हैं। इस वृत्तिका दमन करनेके लिए सरल गन्धयुक्त तुलसी चन्दनादिका निवेदन कर धारण करने पर प्रत्याहार एवं परानुशीलन—दोनों ही हो सकते हैं।”

—त० सू० ३५ वाँ सू०

४-विषय-मूहको अनुकूल करनेका क्या कौशल है ?

“विषय सभी ही जो जीवके विरोधी हों, ऐसी बात नहीं है। विषयोंमें जो राग-द्वेष होता है, वही जीवका परम शत्रु है। अतएव विषय स्वीकार करते समय राग-द्वेषको वशमें रखना होगा। ऐसा होने पर सभी विषयोंको स्वीकार कर भी तुम विषयोंमें आबद्ध नहीं रहोगे।”

—गीता० २० २० भा० ३१४

५-तत्त्वविचार भक्तिकी दृष्टा साधन करनेमें अनुकूल क्यों है ? तत्त्व-विचारके प्रति उदासीन व्यक्तियोंका क्या स्वरूप हो सकता है ?

भक्तोंके लिए गुण-ज्ञान, फलगुर्वराग्य एवं वृद्धा-तर्क आदिका परित्याग जिस प्रकारसे आवश्यक है, उसी प्रकार तत्त्व-विचार एवं तत्पदार्थमें विमल अनुराग अपर्णा करना भी आवश्यक है। किन्तु जो व्यक्ति रागकी अधिकताके कारण तत्त्व-विचारके प्रति अनादर दिखलायें, या तो उन्हें नितान्त-मुक्त, नहीं तो नितान्त बढ़ जाना हीगा।"

त० स० ४ य० म०

६-गृहस्थ भक्तके लिए भक्तिके अनुकूल संसार कैसा हो सकता है? कर्म-जड़ स्मात् विधानके अनुसार पितृ-लोगोंको पिण्डादान क्या भक्तिके अनुकूल है, कि भक्तिके प्रतिकूल है?

"थाढ़ दिवम् उपस्थित होने पर श्रीकृष्ण-सेवा करते हुए वही प्रसादपिण्ड पितृ-लोगोंको दान करनेसे एवं व्राह्मण-वैष्णवोंको भोजन करानेसे ही गृहस्थ भक्तके अनुकूल संसार होता है। समस्त स्मात्-क्रियाओंमें भक्ति-भाव या भक्तिका विचार मिलानेसे ही कर्म का कर्मत्व चला जाता है।"

—जै० ध० ७ व० अ०

६-शरणागत भक्त क्या कर्मकाण्डीय शाद्वादि करते हैं? उनके लिए कौन कौनसी विधियाँ भवितके अनुकूल हैं?

"शरणागत भक्तके लिए पितृ-कृष्ण परिशोध करनेके लिए कर्मकाण्डीय शाद्व की आवश्यकता नहीं है। भगवत्पूजा कर पितृ-लोगोंको प्रसाद अपर्ण कर अपने निजजनोंके

साथ प्रसाद-सेवन करना ही उनके लिए विधि है।"

—जै० ध० १० व० अ०

६-वैष्णव-गृहस्थके लिए अपने वर्णमें भिन्न वर्णमें विवाह या चातुर्वर्ण्य व्यवहार त्याग ही क्या भक्तिके अनुकूल है?

"गृहस्थ-वैष्णव यदि आयं हो अर्थात् चातुर्वर्ण्य हो, तो विवाह कार्य उनके सवर्णमें करना ही उचित है। क्योंकि संसार-यात्रा निवाह करने के लिए चातुर्वर्ण्य नैमित्तिक होने पर भी उनके लिए उसीमें श्रेयः है। चातुर्वर्ण्य-त्यागसे ही वैष्णव हुआ जा सकता है, ऐसी बात नहीं। वैष्णवोंके लिए जो भक्तिके अनुकूल हैं, ऐसे ही कार्य करना कर्तव्य है।"

—जै० ध० ६ व० अ०

६-गृहत्यागी एवं गृहस्थकी भक्तियनुकूल सत्त्वत्ति क्या है?

"गृहत्यागी व्यक्तिकी मायुकरी भिन्न एवं गृहस्थ भक्तकी स्व-वर्णात्मम विधि-सम्मत चृत्ति— यही सत्त्वत्ति है।" पी० व० ३

१०- सात्त्विक भोजन या आहार क्या हरिमजनके अनुकूल है? केवल सात्त्विक आहारसे फलोदय क्यों नहीं होता?

"सबसे पहले सात्त्विक आहार द्वारा सत्त्व की शुद्धि होती है। 'सत्त्व' कहनेसे शरीर एवं मनको जानना चाहिए। सत्त्व शुद्ध होने पर भी यदि सभी व्यवहार सात्त्विक न हो, तो शुद्ध सत्त्व भी क्रमशः अपदस्थ या निम्नगमी होता है। 'व्यवहार' शब्द द्वारा आहारको

छोड़कर और दूसरे सभी आचारको जानना होगा। स्त्री-संगका परित्याग, सत्य, सखलता एवं अहिंसा आदि एवं यम तथा नियम गत सभी कुछ ही 'व्यवहार' शब्द द्वारा समझे जाते हैं। आहार एवं व्यवहार सात्त्विक होने पर भी मानव जब तक नियमित रूपसे आध्यात्मिक अनुशीलन न करें, तब तक मानव प्रकृतिकी भनी प्रकारसे उन्नति किस तरह हो सकती है? यदि कोई सात्त्विक उन्नतिका फल देखना चाहे, तो एक मास तक सात्त्विक आहार, सात्त्विक व्यवहार एवं सात्त्विक अनुशीलन कर देखे, अवश्य ही फल प्राप्त करेंगे। किसी अंशमें त्रुटि या भूल होने पर अवश्य ही फल में बाधा उपस्थित होगी। व्यवहार एवं अनुशीलन करनेकी योग्यता प्राप्त करना हो, तो सर्वप्रथम सात्त्विक आहारकी आवश्यकता है।"

— 'मत्स्य-मांस-भोजन', स०तो० २१८

११-भक्तका वर्णात्मक लक्षण कमं किस प्रकार भक्तिका अनुकूल होता है?

"जीवन-यात्रा सुन्दर रूपसे निर्वाह करने के अभिप्रायसे जो कोई भक्त वर्णात्मक-लक्षण-कर्म स्वीकार करे, वे भक्तिके अनुकूल होनेके कारण 'भक्ति' में परिगणित हैं। वे सभी कर्म और 'कर्म' नहीं कहे जायेंगे। इसमें स्वनिष्ठ भक्त लोग कर्म एवं कर्मफलको भक्तिके अनुगत करते हैं। परिनिष्ठित भक्त लोग केवल लोक-संप्रदा करनेके लिए भक्तिके अधिरोधमें कर्मका आचरण करते हैं। निरपेक्ष भक्त लोग लोकावैक्षण्य त्याग कर भक्तिके अनुकूल

कार्योंको स्वीकार करते हैं।"

— 'प्रयास' स० तो० १०१६

१२-गीतामें किस प्रकारके कर्मके लिए प्रोत्त्वना (प्रेरणा) है?

"कर्मका नाम ही जीवन-यात्रा है। तत्त्व-ज्ञानियोंके कर्मके सम्बन्धमें गीतामें श्रीभगवान् ने स्थिर किया है कि जो कर्म भक्तिका अनुकूल है, उसे करो एवं जो कर्म भक्तिका प्रतिकूल है, उसे त्याग करो।" — चै०शि० २१२

१३-भक्त एवं कर्मके कर्माचरणमें क्या पार्थक्य है?

'तुम विज्ञान, शिल्प, कारीगरी एवं नीतिकी जहाँ तक उन्नति कर सकते हो, करो। उसमें हमारी कोई भी आपत्ति या विरोध नहीं है। बल्कि उसके द्वारा भक्तिके अनुशीलन में बहुत सुविधा ही होगी। हम बेरागी नहीं हैं, हम तो अनुरागी हैं। हमारा केवल यही मात्र कहना है कि सभी कर्म ही भगवत्-सान्मुख प्राप्त करें। सभी कर्मोंका अवान्तर या गौण फल जो स्वार्थ नुस्ख है, उसके द्वारा मधी कर्म चालित न होकर किया जाय। भगवद् भक्तिकी उन्नतिके लिए ही सभी कर्म किये जायें। कार्यके सम्बन्धमें तुम्हारे एवं मेरे जीवनमें कोई भी भेद नहीं है। भेद केवल यही है कि तुम कत्तव्य बुद्धि द्वारा कार्य करोगे मैं भगवान् का दास्य-भाव मिथित कर कार्य करूँगा। किसी समय विरक्तिके कारण मेरी कर्मचेष्टा शिथिल होती है। वह भी किसी अवस्थामें तुम्हारे कर्म से विश्राम प्राप्त करनेकी तरह है। तुम निरथंक

विश्राम प्राप्त करोगे, मैं भगवद्भक्तिके द्वारा कमल अवसर ग्रहण करूँगा। जगत् तुम्हारे लिए कर्म क्षेत्र है, मेरे लिए भक्तिसाधन-क्षेत्र है। तुम्हारे द्वारा किये गये सभी कर्मों को मैं बहिर्मुख कार्य जानता हूँ। क्योंकि तुम कर्मके लिए ही कर्म करते हो, भगवानके लिए कर्म नहीं करते। तुम्हारा नाम सेश्वर-नेतिक या कर्मी है, किन्तु मेरा नाम भक्त है।"

—चै०शि० दम वृष्टि, उपसंहार

१४-क्षमा प्लाघनीय या प्रशसनीय क्यों है?

"क्षमा भक्तिके लिए बहुत अनुकूल है।"

—'भक्त्यानुकूल्यविचारः',

श्री भा०म०मा० १५।६।१

१५-भक्त्यानुकूल विश्वास क्या है?

"भगवान ही वैष्णवोंके एकमात्र रक्षक हैं— यह विश्वास करना चाहिए।"

—'भक्त्यानुकूल्यविचारः'

श्री भा०म०मा० १५।६।३

१६-दरिद्रता भक्तके लिए हरिसेवा एवं दुःसंग-वज्रन करनेके लिए अनुकूल क्यों है?

"दरिद्रताको दुःख समझना उचित नहीं है। क्योंकि भगवान् ने स्वयं कहा है कि जिस पर मैं अनुयह करता हूँ, मैं उसका धन क्रमणः हरण करता हूँ। क्योंकि ऐसा होने पर उसके कपटी बन्धु-बान्धव लोग उसे दुःखोंसे दुःखित जानकर त्याग करेंगे। इस प्रकार उसका असत्यंग दूर हो जायगा।"

—'भक्त्यानुकूल्यविचारः',

श्री भा०म०मा० १५।६।६

१७-हरिव्रतादिके अनुष्ठान से क्या होता

है?

"जयन्ती-व्रत, एकादशी, एवं उज्ज्वा-व्रतादिका पालन—इन सब अनुष्ठानों द्वारा भक्तिकी वृद्धि होती है।"

'भक्त्यानुकूल्यविचारः,' श्री भा०म०मा० १५।७।४

१८-उत्साह क्या है?

"आदरके साथ अनुशीलन ही उत्साह है।"

प० ब० ब० ब० ३

१९-उत्साह भजनका अनुकूल क्यों है?

"यदि भजनके प्रारम्भमें उत्साह रहे एवं ये वह शिविल न होकर स्थिर रहे, तो जोर कदापि नाम-भजनमें उदासीनता, आलस्य या विक्रेप नहीं आ सकता। इसलिए उत्साह ही सभी तरहसे भजनका सहायक है। भजन-क्रिया उत्साहमयी होनेपर थोड़ेसे समयमें ही अनिष्टिता-धर्मका परित्याग होकर भक्ति निष्ठा-अवस्थाको प्राप्त करती है।"

—'उत्साह' स० तो० ११।१

२०-उत्साह-हीन श्रद्धा क्या कार्यकरो है?

"श्रद्धा" कहनेसे विश्वास है, किन्तु उत्साह ही श्रद्धाका जीवन है। उत्साहहीन श्रद्धासे कोई क्रिया नहीं होती। बहुतसे व्यक्ति सोचते हैं कि वे ईश्वरके प्रति श्रद्धा करते हैं, किन्तु उनके विषयमें उत्साह न रहने के कारण श्रद्धा का कार्य कर नहीं पाते।"

—'उत्साह', स० तो० ११।१

२१-बद्धजीवकी उन्नति का क्या उपाय है?

"साधु एवं महाजनों की कृपा एवं कृष्ण-कृपा जनित जन्म-जन्मान्तर की भक्त्युन्मुखी सुकृति प्राप्त करनेपर बद्धजीवका मंगलोदय होता है।"

—'निश्चय', स० तो० ११४

२२-विषय-कथा क्या भक्ति के अनुकूल हो सकती है?

'ज्ञान-पिपासु व्यक्ति लोग अनावश्यक बात नहीं कहेंगे। यदि अनावश्यक बाते कहना

हो, तो अवश्य ही मौन-त्रतका अवलम्बन करना होगा। हरिकथाको छोड़कर सभी बातें ही अनावश्यक हैं। तब हरिभक्ति-विषयके अनुकूल रूपसे जो विषय-कथा हो, वह भी अनावश्यक नहीं है।'

—'धैर्य' स० तो० ११५
(क्रमशः)

—जगदगुरु ३५ विष्णुपाद
श्रील भक्तिविनोदठाकुर



सन्दर्भ-सार

(भक्ति-संदर्भ-२७)

इस स्थाने यही कहा गया है कि अपराधके आश्रय रूपसे वत्सान पाप-वासना समूह भी अपराधके साथ ही नष्ट हो जाते हैं। अतः इस प्रकारके प्रतिवन्धक या वाधाके उद्देश्य से ही विष्णु-धर्ममें कहा गया है—

रागादिदूषितं चित्तं नास्यदं मधुसूदने ।
बद्धाति न रति हंस कदाचित् कर्दमाम्बुनि ॥
न योग्या केशवं स्तोतुं वाग्दुष्टा चानृतादिना ।
तमसो नाशनायालं नेन्दोर्लेखा घनावृता ॥

कीचड़से सने हुए जलके प्रति जिस प्रकार हंस अनुराग प्रकाश नहीं करता, उसी प्रकार रागादि-दोषयुक्त चित्तमें भगवान् मधुसूदन भी

आश्रय नहीं ग्रहण करते। जिस प्रकार मेषावृत चन्द्रकला सम्पूरणरूपसे अन्धकार का नाश नहीं कर यक्ती, उसी प्रकार निथ्या आदि दोषदुष्ट वाक्य भगवान् केशवजी सुनि करनेमें समर्थ नहीं होता।

मुक्तपुरुषोंकी जो आवृत्तिहो, वह प्रत्येक पद-पदमें अप्राकृत-सुखविशेष प्राप्त करनेके लिए ही है। अपिद्व व्यक्तियोंकी जो आवृत्ति हो, वह फलप्राप्ति तक जानना होगा। क्योंकि फल-प्राप्तिमें बाधा देखे जाने पर वहाँ आवृत्ति करनेवालेमें अपराधकी संभावना हो सकती है—ऐसा एक वितकं या संशय उपस्थित होता है। क्योंकि कुटिलता, अश्रद्धा, भगवन्निष्ठा-

च्युतिकारक कृप्तेतर वस्तुके प्रति अभिनिवेश, भजनमें शिथिलता, सेवाकार्य आदि करनेके कारण उत्पन्न अहंकारिता आदि दोष यदि महाभागवत वैष्णव या साधुके संग आदि लक्षणमयी भक्तिके द्वारा भी निवारण करना यदि दुष्माध्य हो अर्थात् दूर न हो, तो ये सभी अपराधके ही कार्य हैं एवं पूर्व-अपराधके सूचक या कारण हैं—ऐसा जानना होगा। अतएव दुर्योधनके निकट पासडवोंके दूत रूपसे भेजे गए भगवान् श्रीकृष्णने जिम प्रकार दुर्योधन द्वारा प्रदान की गई नाना-विलासोपचारयुक्त पूजा ग्रहण नहीं की, उसी प्रकार कुटिल चितवाले व्यक्तियोंके नाना प्रकारके उपचारादि अस्यन्त उनम होने पर भी भगवान् उसे स्वीकार नहीं करते। शास्त्रोंका अथवण करके भी आधुनिक किसी किसी व्यक्तिका अपराधोपके कारण श्रीभगवान्, श्रीगुरुदेव एवं भगवद् भक्तोंके प्रति भीतर ही भीतर अनादर रहने पर भी बाहरी रूपसे उनके प्रति जो पूजनादि यत्न देखे जाते हैं, वे सभी कुटिलता मात्र हैं। अतएव मूर्ख होने पर भी अकुटिल अर्थात् सरल-चित व्यक्तियोंकी भक्तिके आभास द्वारा भी कृतार्थता देखी जाती है। किन्तु कुटिल या कपट व्यक्तियोंका सम्पूर्ण रूपसे भक्तिका अनुष्ठान ही नहीं होता, यह स्कन्द-पुराणमें पराशर मुनिके वाक्यमें देखा जाता है। यथा—

न ह्यपुण्यवतां लोके मूढानां कुटिलात्मनाम् ।
भक्तिर्भवति गोविन्दे कीर्तनं स्मरणं तथा ॥

इस जगतमें मूढ़, कुटिलचित एवं पापी

व्यक्तियोंकी ही श्रीभगवान् गोविन्दके प्रति भक्ति या उनके कीर्तन एवं स्मरण की चेष्टा नहीं होती। विष्णुधर्मोत्तरमें भी कहा गया है—

सत्यं शतेन विघ्नानां सहस्रेण तथा तपः ।
विघ्नायुतेन गोविन्दे नृणां भक्तिनिवार्यते ॥

शत विघ्नों द्वारा सत्य, सहस्र विघ्नों द्वारा तपस्या एवं अयुत-अयुत अर्थात् असंख्य विघ्नों द्वारा श्रीगोविन्दके प्रति लोगोंकी भक्ति निवारित या बाधा प्राप्त होती है।

अतएव शौनकके प्रति श्रीनृत गोस्वामी कहते हैं—

तं सुखाराध्यमूजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः ।
कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥

एकमात्र अनन्यशरण अर्थात् निष्कंचन, अकेतव, सरलचित व्यक्तियों द्वारा अनायास ही सेव्य, किन्तु दुर्जन, असाधु, अभवत व्यक्तियों द्वारा दुष्प्राप्य उन भगवान् श्रीहरिकी कीन कृतज्ञ व्यक्ति सेवा नहीं करते ?

भगवद्भक्त लोग अकुटिल अज्ञ व्यक्ति पर अवग्रह करते हैं, किन्तु कुटिलचित विज्ञ व्यक्तियोंपर कृपा नहीं करते, ऐसा देखा जाता है—

दूरे हरिकथाः केचित् दूरे चाच्युतकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ॥
विप्रो राजंयवैश्यो वा हरेः प्राप्ताः पदांतिकम् ।
श्रौतेन जन्मनाथापि मुहूर्न्याम्नायवादिनः ॥

(भा० ११५।४-५)

जो सभी स्त्री एवं शूद्रादि नीच जन सर्वदा हरिकथा अवण एवं अच्युत माहात्म्य कीत्तंनसे दूरमें अवस्थित हैं, वे सभी ही आप जैसे भगवद्भक्तोंकी कृपाके बोध्य हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य लोग उपनयनरूपी द्विजत्वके कारण श्रीहरिके पादपद्मनाभके योग्य होकर भी वेदवर्णित अर्थवाद-वचनसे मोहित होकर भगवद् उपायनाका परित्याग कर स्वर्गादि कर्मफलमें असबत हो पड़ते हैं।

टीकामें भी कहा गया है—जो व्यक्ति अज्ञ है, वे बाप जैसे महान् व्यक्तिके अनुग्रह के अधिकारी हैं। किन्तु थोड़ासा ज्ञान पाकर उद्दण्डता दिखलानेवाले दांभिक व्यक्ति अविकितसाके योग्य होनेके कारण उपेक्षाके पात्र हैं।

भगवान्की महिमादि दर्शन कर एवं अवण कर भी दूसरी प्रकारकी धारणाके कारण उसमें विश्वास न करनेको ही 'अथढा' कहा जाता है। जिस प्रकार विश्वरूप आदि दर्शन कर भी दुर्योधनका उसमें विश्वास नहीं हुआ अतएव—

आपन्नः संसृति घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्विभेति स्वयं भयम् ॥
(भा० १।१।१४)

दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः
शीर्णा यदेते न वलं समैत् ।
महाविपत्पातविनाशनोऽयं
जनार्दनानुस्मरणानुभावः ॥
(विष्णुपुराण १।१।७।४४)

अर्थात् “घोर संसार दशा प्राप्त असहाय मानव जिनका नाम स्मरण करने पर शीघ्र ही (तुरन्त ही) उससे मुक्त होते हैं एवं स्वयं भय जिन्हें भय करते हैं” आदि शौनक जीके वचनसे एवं “वज्ञाग्रके समान तीखे ये जो हाथीके दांत टूट गये हैं, वह मेरी शक्तिके कारण नहीं, परन्तु महाविपद्विनाशन श्रीहरिके अनुकूल स्मरण द्वारा ही संभव हुआ है” आदि भक्तप्रवर प्रह्लादजीका भगवान्के माहात्म्य-विषयमें जैसा अनुभव देखा जाता है, दूसरे सभीका उस प्रकारसे देखा नहीं जाता। जिस समय शुद्धभक्त लोग भगवान्की महिमा प्रचारकी अभिलाषा करते हैं, उस समय ही उनके द्वारा ऐसे गौण-फलकी इच्छा की जाती परन्तु नित्य माहात्म्य-प्रचार या आत्म रक्षाके लिए ऐसा नहीं करते।

श्रीपरीक्षित् महाराजने भी ऐसी इच्छा प्रवर्ट नहीं की—

**द्विजोपसूष्ठः कुहकस्तक्षको वा
दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ।**

हे विष्णो ! ऋणि पुत्रके आदेशसे क्रूर-स्वभाव तक्षक सर्प मुझे यथेष्ट रूपसे काटे। आप लोग श्रीहरिकथा कीत्तंन करते रहें।

अतएव यहाँ महाप्रभावयुक्त महापुरुषोंमें भी ऐसा फल देखकर उस विषयमें अविश्वास करना उचित नहीं है। किसी स्थलमें भगवद्-उपासना विशेष द्वारा ही ऐसा गौण फल उदित होता है। जैसे—

**यदंकपादेन स पार्थिवात्मज-
स्तस्थौ तदंगुष्ठ-निषीडिता मही ।**

ननाम तत्राहंमिभेन्द्रधिष्ठिता

तरीव सबेत्यरतः पदे पदे ॥

श्रीहरिके आराधनामें रत श्रीघुव जब एकपद पर खड़े हुए थे, उस समय उनके पादांगुष्ठ-भारसे निपीड़िता पृथिवी गजराजके पादभारसे कमणः दक्षिण एवं वाम भागमें अवनता नौका की तरह अद्वनता हो गयी। वे सब प्रकारसे विष्णुकी समाधिमें मग्न होनेके कारण ऐसा फलोदय हुआ था एवं वे भविष्यमें ज्योतिर्मंडलात्मक अपने लोकके परिचालक पदमें अधिष्ठित होंगे, इसलिए उनके उपर्योगी ऐसी उपासना का उदय हुआ था, यह जानना होगा ।

इसके पश्चात् भगवद् आसक्ति च्युतिजनक दूपरे विषयोंके प्रति अभिनिवेशका उदाहरण या दृष्टान्त दिया जा रहा है—

एवमधटमानमनोरथाकुलहृदयो-

मृगदारकाभासेन स्वारव्धकमणा
योगारम्भणतो विष्णवितः स
योगतापसो भगवदाराधन-लक्षणात् ॥

ऐसे असंभव मनोरथके कारण व्याकुलचित्त उक्त मृगशिशुरुपी वे योगीश्रेष्ठ अपने प्रारब्ध कर्म द्वारा योगाभ्यास एवं भगवान्की उपासनासे विच्छुत हुए थे ।

यहाँ यही विचार करने योग्य है कि साधारण प्रारब्धकर्म दुर्बलताके कारण भगवद् भक्तिमें विष्ण उपस्थित करनेमें समर्थ नहीं हो सकते । अतएव इन्द्रच्युम्नादि की तरह पूर्व-जन्मका प्रबल अपराध ही विष्ण उत्पादन का कारण जानना होगा ।

कोई कोई पछिदत व्यक्ति यह सोचते हैं कि भगवद्विषयमें भक्तोंकी उत्कण्ठाको बढ़ानेके लिए भगवान्‌की इच्छानुसार ही ऐसे भक्तोंके सम्बन्धमें साधारण प्रारब्धकर्म ही प्रबल विष्ण उपस्थित करते हैं । यह मृगदेह प्राप्त श्रीभरतके सम्बन्धमें ही कहा गया है । ऐसे अभिप्रायसे ही श्रीनारदजीका पूर्वजन्म में रति प्रकाश होने पर भी कामादि चित्तमल का अस्तित्व कहा गया है—

हन्तास्मिन् जन्मनि भवान् मा मां द्रष्टुमिहार्हति।
अविष्ववक्षयायाणां दुर्दशोऽहं कुयोगिनाम् ॥

हे वह्म ! तुम इस जन्ममें मेरे साक्षात्कार के योग्य नहीं हो । क्योंकि जिनका योग-निष्पत्त एवं कामादि चित्तमल दग्ध नहीं हुआ है, वे लोग मेरा दर्शन नहीं कर सकते ।

जिसके द्वारा आध्यात्मिकादि गुरु-दुर्जनिष्ठा ही वर्द्धित होती है, भक्तिपरायण पुरुषों का उस विषयमें अनादर ही हुआ करता है । जिस प्रकार सहस्रनाम-स्तोत्रमें वर्णित है—

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयञ्चाप्युपजायते ॥

भगवान् वासुदेवपरायण भक्तोंका कदापि अमंगल एवं जन्ममृत्यु-जरा (बुढापा) एवं व्याधिविषयक भय उत्पन्न नहीं होता ।

उत्तम साधकोंकी अपने मनुष्य देहकी रक्षाके लिए जो वासना देखी जाती है, वह केवलमात्र उपासना-वृद्धिविषयक लोभसे ही जानना होगा, परन्तु केवलमात्र देहरक्षाके लिए नहीं । इसलिए ऐसी दशामें भक्ति-तात्पर्य

की हानि नहीं होती। अतएव विवेकशक्ति सम्पन्न पुरुषका भी भक्तितात्पर्यंराहित्यके कारण देखी जानीवाली भक्ति-जिथिलता बीच बीचमें अनुष्ठित भक्ति द्वारा दूर नहीं होती, वह अपराध अदलम्बन रूपसे ही जाना जाता है। अतएव अपराधके अनुमान-विषयमें अप्रवृत्तिके कारण मूँढ एवं असमर्थ पुरुषका भी योड़से ही प्रयाससे सिद्धि-सामर्थ्य हुआ करता है। उनके प्रति दीनदयालु श्रीभगवान की कृपा भी अधिकतर रूपसे देखी जाती है। परन्तु विवेक शक्तिसम्पन्न पुरुषोंमें भी जो अपराध देखा जाता है, वह अत्यन्त दीरात्म्य का ही फलस्वरूप है। विवेक-शक्तिहीनके लिए वह अत्यन्त दीरात्म्यके कारण नहीं है। अतएव जानी एवं समर्थ शतघनु राजाका निरन्तर भगवदुपासना-समयमें भी विघ्न संगत या उपयुक्त ही हुआ था। इस प्रकार मूँढ चूहे आदिका अपराध होने पर भी पूर्व विचारानुसार सिद्धिप्राप्ति उपयुक्त ही होती है, क्योंकि उनमें ऐसा दीरात्म्य न होनेके कारण भजनका स्वाभाविक प्रभाव ही अपराधका अतिक्रम प्रकाशित होता है। भक्ति आदिसे उत्पन्न अभिमान वैष्णव-अवगानना आदि दूसरे अपराधमूहका उत्तादक होनेके कारण एवं ही किसी अपराधके फलस्वरूपसे ही उत्पन्न हुआ करता है। जिस प्रकार दक्षका पूर्वजन्ममें श्री शिवजीके प्रति अपराध होना देखा जाता है। अतएव केवल एकबारमात्र भजनसे ही जो सिद्धि कही गई है, वह प्राचीन या नूतन किसी प्रकारके अपराध न होनेके कारण ही न्यायसंगत है। परन्तु मरणकालमें जिस किसी प्रकारसे एकबार भजन ही अपेक्षित

हो रहा है। जिनका पूर्व या वत्तमान जन्म की सिद्धि भगवदुपासना आदि मृत्युकालमें अपना प्रभाव प्रकाश कर मरणके पश्चात् ही भगवत् साक्षात्कार कराती है। ऐसे पुरुषका मृत्युकालमें जो दशा होती है, उसका गीतामें ऐसा वर्णन है—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलोवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥

हे अजुन ! मनुष्य मृत्युकालमें जिस प्रकारके भावका चिन्तन करता हुआ देहका त्याग करता है, वह उसी भावद्वारा आकृष्ट होकर पश्चात् वैसा ही रूप प्राप्त करता है।

श्रीमद्भगीताके अनुसार एकबार मात्र भी भगवान्के नामग्रहणादि संभवपर है। अतएव अपराधके अभावके कारण अपराधनाशके लिए पुनः आवृत्तिकी अपेक्षा नहीं रहती। अजामिल को जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त हुई, उस प्रकार उस समय भगवानका नाम श्रवणादि करने पर भी यमदूतों का नहीं हुई। अजामिलने स्वयं कहा है—

अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तम दर्शने ।
भवितव्यं मंगलोन येनात्मा मे प्रसीदति ॥

(भा० ६२।३२)

मैं दुश्चरित्रयुक्त होने पर भी इस समय जिनकेद्वारा मेरा चित्त प्रसन्न हुआ है, ऐसे इन सुरक्षेष्ठों (विष्णुदूतों) के दर्शन विषयमें अवश्य ही पूर्व मंगल कारणरूपसे वत्तमान है। यदि ऐसा न हो, तो वेष्यासक्त मरणोन्मुख मेरी जिह्वा कदापि हरिनाम-ग्रहणमें समर्थ नहीं होती।

त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

अष्टम वृष्टि (उपसंहार)

(संख्या १०, पृष्ठ २१४ से आगे)

सेश्वरनैतिक एवं भगवदभक्तके जीवनमें सभी कार्य अनेक स्थलमें एक ही प्रकार है, केवल निष्ठा-भेदसे उनमें प्रकृति-भेद या स्वभाव-भेद हुआ है। जो मेश्वरनैतिक केवल कर्मजड़ हैं अर्थात् जड़ातीत वस्तुको उद्देश नहीं करता, वह नितान्त तुच्छ है। ईश्वर माननेपर भी उनके ईश्वरमें स्वरूपबोध एवं जीवका गतिबोध नहीं हैं। उनका कर्मचक्रसे उद्धार नहीं है। जो सभी सेश्वरनैतिक जड़ जगतको अकिञ्चित्कर (नगरण या तुच्छ) जानकर चिज्जगत्की आशा करते हैं, वे लोग जड़कर्म-बन्धसे मुक्त होनेके लिए तीन प्रकारके उपायोंको स्थिर करते हैं—

(१) जड़ कर्मके अभ्यासको क्रपणः शिथिल कर चित्तत्वमें प्रतिष्ठित होना।

(२) चित्तस्वरूप विष्णुमें कर्मापेण करना। सभी कर्मं करते समय विष्णु-प्रीति संकल्प करना एवं कर्मं समाप्त होने पर उसे श्रीकृष्णको अपेण करना।

(३) जो कर्म नहीं करनेसे नहीं भलता, उसमें सब प्रकारसे श्रीकृष्ण-भक्तिको मिश्रित करना। जो कार्य नहीं करने पर भी जीवन-यात्राका निर्वाह हो जाय, उसका परित्याग करना।

जो व्यक्ति पहले उपायका अवलम्बन करते हैं, वे तापम् या योगी हैं। तापस व्यक्ति बहुत कष्ट सहन कर कर्मवन्धनको शिथिल करना चाहते हैं। वैदिक पञ्चामि विद्या एवं निदिध्यासन वैदिक योग-तापसोंकी प्रक्रिया है। अष्टांग-योग, षडाङ्ग-योग, दत्तात्रेयी-योग एवं गोरखनाथ-योग आदि बहुत प्रकारके योग प्रस्तावित हुए हैं। उनमें से तन्त्रमें कहे गये हठ-योग एवं पातंजलमें कहे गये राजयोग जगतमें बहुत कुछ आदर-प्राप्त हैं। पातंजल दर्शनका अष्टांग-योग सबसे प्रधान है। इस योगका तात्पर्य यही है कि कर्मबद्ध जीव पहले अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्माचर्य एवं परियह—इस प्रकार पाँच प्रकारके यमका अभ्यास करे एवं शोच (पवित्रता), तपस्या, सन्तोष, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिद्यान—ये पाँच नियम अभ्यास करे। उसके द्वारा असत्कर्मका परित्याग होकर सत्कर्मका अभ्यास होनेपर आसन-अभ्यास एवं पश्चात् प्राणायाम-अभ्यास करते हुए जितश्वास हो। जितश्वास होकर विष्णुमूर्तिका ध्यान, पश्चात् धारणा करे। समस्त विषय-निवृत्ति रूप प्रत्याहार ध्यानके पहले ही करना होगा। पश्चात् चित्त निर्मल होने पर समाधि अवलम्बन करे। इस प्रक्रियाका मूल तात्पर्य यही है कि अभ्यास द्वारा कर्म त्याग कर

कर्मशून्य हो जाय। इसमें बहुत विलम्ब होता है एवं बहुत सी बाधाएँ उपस्थित होती हैं। १

जो व्यक्ति दूसरा उपाय अवलम्बन करते हैं, वे लोग सोचते हैं कि चित्त जिस विषयके प्रति अनुरक्त है, उसकी आलोचना करते समय पहले विष्णु-प्रीति कामना एवं अन्तमें कृष्णार्पण करना चाहिए। यह स्वभाव-विशुद्ध कार्य है। २ विष्यराग द्वारा चलित वित क्या स्वभावमें ही विष्णु-प्रीति कामना का संकल्प कर सकता है? यदि लोक रक्षाके लिए ही ऐसा संकल्प करें, तो चित्त वा अपना कार्य उसे कहा नहीं जा सकता एवं वह केवल मनको चक्षु-संकेत दिखलाना हुआ। भविष्यत् जन्ममें प्रचुर अन्त पानेके लिए जो सभी स्त्रियाँ अन्तपूरण पूजा करती हैं, उनका विष्णु-प्रीति-काम कहकर संकल्प केवल वाक्य मात्र है। इस प्रकारकी संकल्प-विधि एवं अपांग-विधि जीवको मुक्त करनेमें समर्थ नहीं हैं, इस विषय में कहना ही क्या है?

तीसरा उपाय युक्तियुक्त या उपयुक्त है। क्योंकि चित्तका जो विषयके प्रति राग है, उसी

के अनुकूलमें कार्य होता है। चित्त अच्छे खाद्यमें या भोजनमें आसक्त है, उसे ही भगवत् प्रसादरूपसे ग्रहण करने पर भगवद्भावका प्रचुर अनुशीलन एवं विष्यराग एक ही साथ कार्य करने लगे। इससे उच्च रसके आस्वादन द्वारा नीच राग अत्यन्त थोड़े समयमें ही उच्च रसमें परिणत हो जाता है। इसे ही गौणी-भक्ति कहकर कर्मको पृथक् कर दिया जाता है। फल-स्वरूप कर्म करने पर भी कर्मकी सत्ताका लोप इसीसे संभव हो सकता है। समस्त शारीरिक एवं मनसिक कार्य जब इस प्रवृत्तिद्वारा किये जाये, तब कर्म गौणी-भक्तिरूपमें ब्रती होकर मुख्य भक्तिकी सब प्रकारसे सेवा करता है। सेश्वरनैतिकोंमें से जिन व्यक्तियोंमें यह प्रवृत्ति प्रवल हो, उन का ही जीवन अन्तमुख है। दूसरे सभी सेश्वरनैतिकोंका जीवन बहिमुख है। ३

इनमें सभी पूर्वपक्षोंका खण्डन कर भक्ति ही जीवोंका एकमात्र अनुष्ठान करने योग्य कर्तव्य है, यह सिद्धान्त स्थिर हुआ। भक्ति ही जीवका परम पुरुषार्थ है। यह जगत्की

१—यमादिभिर्योगपर्यः कामलोभहतो मुहुः। मुकुन्दसेवया यद्गत्यादात्मा न शाम्यति ॥

(भा० १।६।३६)

२—एतं नृणां क्रियायोगः सर्वे संशुतिहेतवः। त एवात्मदिनाशाय कल्पन्ते क्लिपताः परे ॥

सदव्र क्रियते कर्म भगवत् परितोषणम्। जानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥

कृष्णाणा यत्र कर्माणि भगवच्छ्रुक्षया सकृत । गृणन्ति गुणनामानि कृष्णास्यानुस्मरन्ति च ॥

(भा० १।४।३४-३६)

३—आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः कि, नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम् ।

अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः कि, नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम् ॥

(नारदपञ्चरात्र)

उन्नति एवं मंगल साधनका अविरोध है एवं शान्ति तथा निर्मल आनन्द द्वारा जीवका नित्यत्व प्रदान करता है। भक्त-जीवन ही यथार्थ नर-जीवन है। यह सम्पूर्ण एवं मंगलमय है। यहो जगत्के भीतर एक मात्र वैकुण्ठ या नित्य तत्त्व है।^१

जब भक्त-जीवन साधन भक्तिका अनुशीलन करते-करते भावजीवनका अतिक्रम करते हुए प्रेष-जीवनमें पदार्पण करता है, तब सर्व-माधुर्य एवं ऐश्वर्यके पति भगवान् श्रीनिवास उनका परम रस-भण्डार खोलकर आह्वान कर कहते हैं—“सखे ! यह भण्डार मैंने यत्नपूर्वक तुम्हारे लिए ही रखा है, तुम इसके एकमात्र अधिकारी हो। तुमने मुझे परित्याग कर मेरी मायी शक्तिके अन्धेरेमें पड़े हुए थे। तुम्हारे लिए मैंने दिनरात यत्न प्रकाश किया है। तुम तुम्हारे अपने प्रयासमें यहाँ तक आ गये। मैं इसमें परमानन्दको प्राप्त हुआ। तुम मेरे नित्य नवीन प्रीतिमय विग्रहकी सेवा करते हुए अपार आनन्द समुद्रमें मेरे साथ कीड़ा करो। तुम्हें भय नहीं है, शोक नहीं है, तुमने अमृत प्राप्त कर लिया है। तुमने मेरे लिए सभी बन्धन तोड़ दिया है। मैं तुम्हारी प्रीतिका क्रूण शोष नहीं कर सकता। तुम

अपने कार्य द्वारा स्वयं सन्तोष प्राप्त करो।”

श्रीचैतन्य-शिक्षामृतका परित्याग कर जो व्यक्ति दूसरी शिक्षा ग्रहण करते हैं, उपभोगजीने उनके सम्बन्धमें भागवतके पंचम स्कन्धके पाँचवें अध्यायमें एक उपदेश प्रदान किया है। तुम उसे यत्नपूर्वक अपने मस्तक पर धारण करो—

गुरुन् स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्ञननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत् स्यात् न पतित्र स स्यात्
न मोचयेत् यः समुपेतमृत्युम् ॥

अर्थात् भक्तिपथके उपदेश द्वारा जो व्यक्ति समुपस्थित मृत्युरूपी संसारसे मोचन नहीं कर सकते, वे गुरु ‘गुरु’ नहीं हैं, वे स्वजन ‘स्वजान’ नहीं हैं, वे पिता ‘पिता’ नहीं हैं, वे माता ‘माता’ नहीं हैं, अर्थात् उनका गम्भीरारण करना अनुचित है, वे देवता ‘देवता’ नहीं हैं अर्थात् उनका पूजाग्रहण करना अनुचित है, वे पति ‘पति’ नहीं हैं अर्थात्, उनका पाणिग्रहण करना उचित नहीं है।

ॐ श्रीकृष्णचर्ताय चतुर्वर्णसस्तु ॥

समाप्तश्चाय गन्थः ।

१—अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभ्रद्राण्य च शं तनोति ।

सत्वस्य षुड्डि परमात्मभक्ति ज्ञानञ्च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥ (भा० १२।१३।४१)



वर्ष-समाप्ति पर दो-एक शब्द

स्वयं भगवान् पूर्णावितारी व्रजेन्द्रनन्दनाभिन्न
महावदान्य-शिरोमणि श्रीश्रीगौरचन्द्रकी

अहैतुकी कृपासे अप्राकृत गोलोक-धामकी
वात्त-वाहिनी, मर्त्य-जगत्के असीम क्लेश-

संतापादिकी अशेष रूपसे अपनोदनकारिणी, शुद्धभक्तिरस पिपासु जनोंकी जीवनदायिनी, प्रेम रसिक भक्तोंकी सर्वस्व-स्वरूपा श्री 'भागवत-पत्रिका' अपने विशुद्ध चिदालोककी आभाको सर्वत्र विकीर्ण करती हुई अपने अनुयम अमृत संदेशको असंख्य जीव-हृदयमें पहुँचाती हुई अपने प्राकट्यके अठारहवें वर्ष को पूरण कर रही है।

'श्रीभागवत-पत्रिका' का एकमात्र उद्देश्य एवं प्रेरणा-स्रोत कलियुग-पावनादतारी श्रीशचीनन्दन श्रीश्रीगोरहरिकी सर्ववेद-सम्मत, निखिल विद्वजनोंकी समादरणीय, अद्वितीय, अफुरन्त, अलौकिक तथा अश्रुतपूर्व शिक्षाएं एवं निखिल भूवन कल्याणकारिणी लीलाएं हैं। इसमें वायस-तीर्थ या 'उच्छ्वष-गत' तुल्य मतिसर्वस्वहारिणी, भगवद् विमुखकारिणी असत्-कथा या हलाहल विषतुल्य विषय वात्तिरिक्तोंके लिए कोई स्थान नहीं है। माया अज्ञान, अन्धकारसे आच्छन्न, विषम विषय-विषमे जर्जरित, कालके करात कवलमें निष्प्रेषित, आत्म-परमात्म तत्वके अनुसंधानसे रहित तथा भद्रंकर काम-कोघादि नक्तमकरों से परिपूरित भव-जलधिमें गोते खा रहे जीवों को ज्ञानलोक प्रदान करनेके लिए, भगवत् प्रेम-सुधा पान करनेके लिए, कालातीत अशोक-अभय राज्यमें उन्हें प्रेरण करनेके लिए, जीवोंके परम प्रेमास्पद व्रजेन्द्रनन्दनका अनुसंधान प्रदानके लिए, महा भयंकर भव-जलधि उत्तीर्ण होनेके योग्य सुदृढ़ नौकास्वरूप हरिकथाका आश्रय प्रदान करनेके लिए ही 'श्रीभागवत-पत्रिका' का इस मत्यंधाममें

अवतरण हुआ है।

एकमात्र वास्तव, कठोर एवं अप्रिय सत्य का निर्भीक रूपसे प्रचार करना ही हम जैसे भगवद्भक्तजनोंके पादवाणवाही, तदीय सेवकाभिमानी, अकिञ्चन एवं शुद्धातिशुद्ध जनों का उद्देश्य है। हम लोकप्रियता या जागतिक स्वार्थपरायण, भगवद्विमुख व्यक्तियोंका मन रखनेके लिए या उनसे अपना कुछ शुद्ध स्वार्थ-परिपूरण करनेके लिए अपनी सत्यप्रियता का त्याग करनेके लिए कदापि तंयार नहीं हैं। बत्तमान बीसवीं शताब्दीके महान्‌दृतम पुरुष-शिरोमणि निखिल विद्वजनोंके बरेष्य, अप्राकृत बैकुण्ठ वाणीके साक्षात् श्रीविग्रह-स्वरूप जगदगुरु श्री विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठकुरके शुद्धातिशुद्ध सेवकाभिमान करते हुए हम अवस्थ्य ज्ञागतिक जनमतका पूरण रूपेण परित्याग कर एकमात्र श्रीत-वाणीका ही समादर करेंगे। कुछ ज्ञागतिक स्वार्थपरायण, सर्वमत-समन्वयकारी सनातन-सत्यसे पराद्भुत व्यक्तियोंका कथन है— 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।' किन्तु हम ऐसे विचारके सर्वथा असमर्थक हैं। हम जैसे श्रीरूपानुगत्याभिलाषी, शुद्ध-बैष्णव पादरेणुके आकांक्षाकारी निष्क्रिच्चन व्यक्तियोंका जीवन-सर्वस्व कृपणकथा एवं कृष्ण-काष्ठण-सेवा ही है। अतएव हम इस उद्देश्यकी पूतिके लिए कोई भी उचित कार्य करनेमें पश्चात् पद नहीं होंगे।

आजकल तो Majority (बहुमत) का

युग है। भजे ही अधिकांश व्यक्ति ही भगवद्विमुख हो, अधर्मके अनुयायी हो, कुत्सित कार्योंमें अनुरागी हो; अन्यायके समर्थक एवं असत्यप्रिय हो, उनके मतमें मत देना ही बत्तमान तथाकथित राजनेताओं, पण्डिताभिमानी जड़-मायामुग्ध विचारकों एवं गण्यमान्य समझे जानेवाले विषय-प्रदान्य, अपस्वार्थपर व्यक्तियोंके विचारसे श्रेयस्कर है। किन्तु श्रौत-पथावलम्बी, विशुद्ध भगवद् धर्मपरायण भक्त्यभिलाषी व्यक्तियोंका इसमें सम्पूर्णरूपसे निरादर एवं असमर्थन नित्यकाल ही है। जागतिक लोगोंकी प्रशंसा एवं क्षणिक आदरको प्राप्त करनेकी आशासे या अपनी क्षुद्र जागतिक सुख-सुविधा पानेके लिए भगवद् भक्त लोग कदापि भगवद्विषयमें अपनी ऐकान्तिक रति-मतिका परित्याग नहीं करते। अतएव शास्त्रोंका यह वचनगंभीर वचन है—
जीवितं विष्णुभक्तस्य वरं पञ्चदिनानिवं ।
न तु कल्पसहस्राणि भक्तिहीनस्य केशवे ॥

आजकलके तथाकथित राजनीतिज्ञ लोग धर्मको परिपूर्णसे त्याग कर या उसपर नाना प्रकारके अंकुश लगाकर चिर शान्ति एवं शाश्वत सुखकी चेष्टा कर रहे हैं। आजकलके बहुतसे व्यक्ति धर्मको सकीर्णता या अयीक्षिकता कहनेमें भी संकोच बोध नहीं करते। यह उनके धर्मके सम्बन्धमें यथार्थ ज्ञान एवं परिचय न होनेके ही कारण है। धर्म ही जागतिक अस्तित्वका प्राणस्वरूप है। यदि राजनीति, समाजनीति, शिक्षा-नीति, देश-नीति आदि धर्म-नीतिके अनुगत रहें, तभी कहीं जाकर कल्याणके पथका अनुसंधान पाया

जा सकता है। उस अवस्थामें यथार्थ शान्ति एवं सुखकी आशा की जा सकती है। धर्मका सम्बन्ध आत्माके नित्य चिन्मय स्वरूपसे ही है, अनित्य देह और मनसे नहीं। जब तक आजकलके शिक्षित समाजके व्यक्ति एवं जननेतृत्व एवं दिग्दर्शन करनेवाले व्यक्ति धर्मका यथार्थ तात्पर्य एवं उसकी आवश्यकता नहीं समझें, तब तक वे लोग किसी भी प्रकार समाजमें एवं शान्तिपूर्ण जीवनकी स्थापना करन सकेंगे। धर्मका यथार्थ रूपसे पालन करनेसे ही परस्पर विवाद, असन्तोष, हिंसा-द्वेष, स्वर्थपरता, अज्ञानजनित दुःख-संताप, नाना प्रकारके भ्रम, अश्लीलता, कामपरायणता, अनैतिकता, आदि असंख्य दुर्दमनीय दोषोंका निराकरण हो सकता है। परमार्थ-धर्मके प्रति आस्था रखने पर मनुष्य सहज असत्-पथ या कुकर्म, विकर्म आदिकी ओर आकृष्ट नहीं होता। आत्मज्ञान प्राप्त व्यक्ति सभी प्रकारके समस्याओंका ही सहज रूपमें हल निकाल लेते हैं। संसार का यथार्थ स्वरूप नहीं जाननेवाले व्यक्ति ही जगत्‌को सबंश सुखमय एवं अभावरहित बना देनेकी कल्पना किया करते हैं। संसार मायाबद्ध कृष्णबहिर्मुख जीवोंके लिए एक भोगायतन या कारागार स्वरूप है। अतएव जड़ जगत की भुग्मिका जीवोंके आत्मसंशोधनके लिए होते हैं। इसमें पूर्णांतम सुख एवं अभावरात्यकी कल्पना केवल मृग-मरीचिका तुल्य है। यहाँ हमारी अवस्थिति तात्कालित एवं अनिश्चित है। अतएव बुद्धिमान् व्यक्ति केवल भौतिक उन्नति का उतना आदर नहीं करते, जितना कि

धार्मिक या पारमार्थिक उन्नतिका। पारमार्थिक उन्नति ही यथार्थ उन्नति है, भौतिक उन्नति केवल विडम्बनामात्र है। पारमार्थिक उन्नतिके बिना मनुष्य सर्वांगीन उन्नति प्राप्त नहीं कर सकता। पारमार्थिक कर्तव्यके निभानेपर ही मनुष्यका कर्तव्य पूर्ण होता है। धर्मके आधारपर जो सम्बन्ध निश्चित होते हैं, वे ही चिरस्थायी एवं अटल हैं। धर्म साक्षात् भगवानका स्वरूप ही है। अतएव धर्मकी अवज्ञा प्रकारान्तरसे ईश्वरकी ही अवज्ञा है। परमकाश्चिक भगवान्‌ने मायामुग्ध जीवोंको अपना संधान प्रदान करनेके लिए तथा उनके परम कल्याणके निमित्त ही धर्मका प्रकटन किया है। क्षुद्र मायाबद्ध जीवका सामार्थ्य एवं बुद्धिमत्ता आदि कहाँ तक उसकी रक्षा कर सकते हैं? अपनी चंचलासे बद्ध जीव कदापि मायाके बन्धनसे छूट नहीं सकता। पूर्णतम वस्तु भगवान्‌का आश्रय पाकर ही जीव पूर्णता, अच्युतत्व, यथार्थता, अखण्डता आदि प्राप्त कर सकता है। धर्मविहीन सांसार नरकसे भी अत्यन्त भयकर हैं एवं बास करनेके अयोग्य हैं। धर्म मनुष्य जीवनका एक मुख्यतम एवं आवश्यक अंग है। जिमे प्राणहीन देहका कोई मूल्य नहीं है, उसी प्रकार मनुष्य धर्मरहित होने पर मृततुल्य है। अतएव कहा गया है—

नेह यत्कर्मं धर्माय न विरागाय कल्पते ।
न तीर्थपदसेवाय जीवन्नपि मृतो हि सः ॥

जगत्‌के सभी नियम, कर्म-नीति, विधि-विद्यान आदि धर्मकी उन्नतिमें सहायता करने के लिए एवं उसका परिपोषण करनेके लिए ही हैं। यदि वे उल्टे धर्म पर ही कुठाराघात करें, तो उन्हें दुष्ट काटेकी तरह परित्याग

करना ही उचित है। धर्मकी रक्षा करने पर ही मनुष्य अपनेको सुरक्षित एवं सर्वसम्पन्न कर सकता है, अन्यथा नहीं।

भौतिकवादका आजकल खूब चाक्चिक्य देखा जा रहा है। पहलेकी तुलनामें मनुष्य-जीवन ज्यादा सुख-सुविधासम्पन्न एवं समृद्धिशील जैसा प्रतीत होने पर भी यथार्थमें पतनोन्मुख है। क्यों कि आजकल मनुष्यमें पशुता बढ़ रही है, नैतिक-चारित्रिक पतन क्रमशः उग्रतर होता जा रहा है। मनुष्य-मनुष्यमें प्रमभावका संकोच होता जा रहा है। उदारता एवं स्वाधीनताके नाम पर यथेच्छाचारिता, व्यभिचारिता एवं कामुकताको यथेष्ट अवसर दिया जा रहा है। इस ऐसी अवस्थामें जगत्‌में यथार्थं शान्ति, सुख-समृद्धि, उन्नति कैसे हो सकती है?

अतएव सभी धर्मप्राण एवं समदृष्टि सम्पन्न व्यक्तियोंका कर्तव्य है कि येन-केन प्रकारेण धर्मकी रक्षा एवं पालन करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा करें एवं कलियुगके एकमात्र उपाय कृष्णनाम-संकीर्तन यज्ञमें अपनेको आहृति देने के लिए प्रस्तुत रहें। इसी उपाय द्वारा वे अपना एवं दूसरोंका मंगल विद्यान कर सकें। स्वयं श्रीश्रीगोरसुन्दरके अभूतपूर्व आदर्श, विचार-सिद्धान्त आदि ग्रहण कर अपना जीवन सर्थक करें। अतएव यह निवेदन करते हुए हमारे बवतव्यकी इतिश्री करते हैं—

संसार सित्युतरणे हृदयं यदि स्यात् ।
संकीर्तनामृतरसे रमते मनश्चेत् ।
प्रेमाम्बुधौ विहरणे यदि चित्तवृत्ति-
इच्छतन्यचन्द्रचरणे शरणं प्रयातु ॥
—त्रिदण्डभिक्षु भक्तिवेदान्त पद्मनाभ